International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 24-06-2019; Accepted: 26-07-2019
www.socialsciencejournal.in
Volume 5; Issue 5; September 2019; Page No. 141-143

बघेली लोक साहित्य में लोक मान्यताओं की अभिव्यक्ति का अध्ययन

डॉ. अंशुला मिश्रा
अतिथि विद्वान हिन्दी, शासकीय इंदिरा गांधी गृह विज्ञान कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शहडोल, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
लोक जीवन भारतीय मूल संस्कृति का तात्विक अंश है। भारतीय संस्कृति में समयानुकूल परिवर्तन भी हुए परन्तु लोक संस्कृति आज भी अपने मूल रूप में सुरक्षित है। संस्कृत और लोक संस्कृति एक ही धारा के दो पुष्प है एक को माली ने संवारा और सजाया है तो दूसरी प्रकृति की गोद में स्वयंमेव हंसा और खिला है। राय कृष्णदास[1] कहते हैं –"लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पलती और पनपती है। लोक संस्कृति के उपासक बाहर की पुस्तकें न पढकर अंदर की पुस्तकें पढ़ते है। उनके हृदय सरोवर में श्रद्धा के फूल सदा फूले रहते हैं। वस्तुतः लोक संस्कृति का मूल सहज और विश्वास है दूसरी ओर प्राचीन अर्थ व्यवस्था एवं संस्कृति का रूप। लोक जीवन के सहज चित्र बघेली लोक जीवन में प्राप्त होते हैं। अनेक शैली, बोली, भाषा में गाये गीत एक ही लोक संस्कृति का शाश्वत रूप प्रस्तुत करते हैं। एक तार में गूथे अनेक रंगीन रत्नों के समान प्रदेश – प्रदेश के लोकगीत स्वयं में एक ही संस्कृति को समाहित किये है।

मूल शब्दः बघेली लोक साहित्य, लोक जीवन, भारतीय संस्कृति, मान्यताएँ, अभिव्यक्ति

प्रस्तावना
बघेली लोक गीतों में लोक जीवन की एक एक रेखा, सुख–दुख, हास–परिहास, विजय–पराजय के इतिहास के दर्शन होते हैं। उनमें आस्था, विश्वास कर्मण्यता, सौजन्यता, शालीनता आदि लोक संस्कृति के मूल तत्व एवं सामाजिक रीतियाँ, पारिवारिक जीवन आदि के दर्शन होते हैं।

आधुनिक युग में अध्याय की नई दिशाओं और साहित्य, कला, आदि की नवीन प्रवृत्तियों ने साहित्य मनीषियों की दृष्टि में 'लोक' की महत्ता निर्विवाद रूप से प्रस्थापित कर दी है। अतएव 'लोक' से सम्बन्धित विषयों का शास्त्रीय पक्ष 'लोक' की सही–सही व्याख्या के अभाव में सर्वथा सम्पूर्ण है।

'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में निश्चित मत उपलब्ध नहीं है और न ही भारतीय एवं पाश्चात्य भाषाविद में मतैक्य है।[1] ऋग्वेद में प्रयुक्त 'देहि लोकम्' के अनुसार 'लोक' का स्थान के अर्थ में एक प्रयोग मिलता है। वेद (अथर्ववेद और ऋग्वेद) पार्थिव और दिव्य दो प्रकार के लोक की स्थिति व्यक्त करतें हैं। पर 'ब्राम्हण–ग्रन्थ', 'वृहदारण्यक उपनिषद' एवं 'बाजसनेही संहिता' में वैसे भेदात्मक स्थिति का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है।

आर्यों के आगमन पर आर्येतर जातियों से उनकी मुठभेंड दो भिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के रूप में व्यक्त हुई। फलस्वरूप 'वेद' और 'वेदेतर' स्थिति प्रकट हुई। इससे एक और अन्य अर्थ की उद्भावना सहज ही हो गई जिसके अनुसार 'लोक' का दूसरा अर्थ वेद–विरोधी (वेदेतर) हुआ। 'वेद' और 'लोक' की भिन्नता ने वेद की प्रतिष्ठा के साथ 'लोक' के स्वतंत्र महत्व को क्रमशः स्वीकार किया किन्तु आज "लोक" वेदेतर संस्कृति से संकुचित अर्थ से ऊपर उठ चुका है। उसकी भावना वैदिक और अवैदिक दोनों वर्गो को सहज रूप से छूने लगी है। वह परम्परा का सहेजक एवं अनुभूति की संवेदानापूर्ण अभिव्यक्ति का सत्त संवाहक है। उसके पास अपने शब्द, भाषा और लोकग्राही शैली है।[2] जीवन से संबंधित सभी उपकरणों को लिये हुए उसका अपना सामूहिक व्यक्तित्व है। वस्तुतः जिसे संस्कृति की संज्ञा दी जाती है वह 'लोक' से भिन्न नहीं है। उसका उत्स 'लोक' का महत्व सर्वकालीन है। गीता के 'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमाः[1] के द्वारा लोकशास्त्र तथा लौकिक आचारों की महत्ता स्पष्टतः मान्य है। अशोक के शिलालेखों में 'लोक' का प्रयोग समस्त प्रजाजनों के हित में हुआ है। बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ 'लोक' मानव मात्र के भावों से भूषित हुआ। प्राकृत एवं अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोकजत्ता', 'लोअप्पवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्व व्यक्त करते हैं। यजुर्वेद में 'लोक' (समाज) की एक विराट कल्पना की गई है।

अतः 'लोक' साधारण जन समाज है, जिसमें भू–भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग–भेद रहित, व्यापक, एवं प्रचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया है, किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है।[3] वही समाज का गतिशील अंग है। डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में – "लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्याय में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार, और निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी–मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कलाणतम रूप है।"[4]

आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य, आदि से युक्त होकर साधारण जन–समाज जिसमें पूर्व–संचित परम्पराएँ, विश्वास और सुरक्षित है तथा जिसमें भाषा और सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनपढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के बर्थ में होता है।

भारतीय लोक–साहित्य इसी क्षेत्र का साहित्य है जो नवीन प्रवृत्तियों के रूप में भावी भारत के लिये मंगल का सन्देश लेकर आ पा रहा है, जो युगों से भगवती भगीरथी की तरह प्रवहमान होते हुए भी (लोक के भीतर व्याप्त होकर) युगों से विद्वज्जनों के समक्ष उपेक्षा की वस्तु बना हुआ था, पर अब 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः' मन्त्र अपध्येताओं के लिये नया दृष्टिकोण लेकर आ पा रहा है। 'यह भूमि माता है' मैं पृथिवी का पुत्र हूँ (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः) अर्थवेद का यह सूक्त आज के मनीसियों की आत्मा में 'लोक' के सन्नैकटय के प्रति प्रेरणा संचार कर रहा

है। भारतीय किसान भारतीय 'लोक' का महाप्राण है। वह युगों से उक्त सूक्त के आशय को क्रियान्वित करता आ रहा है। उसका जीवन 'लोक' का यथार्थ प्रतिनिधित्व करता आ रहा है। अतयेव वही लोक–साहित्य की आधार–शिला हैः जेम्स ग्रिम के जनसमुदाय का प्रधान अंग है।

सुने वाक्य शब्दों में इत्र परम्परा कालजीवन यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक अनुस्ठानों, विश्वास–विचारों तथा वाड़मय से अपने लौकिक प्रकाश को प्राप्त करती है उन्हें अंग्रेजी में 'फोक–लोर' के लिये वैसे लोक–शास्त्र, लोक–परम्परागत लोक–प्रतिमा, लोक–प्रवाह, लोक–पथ, लोक–विधान, लोक–अयन, आदि शब्दों की ओर भी श्री तिवारी ने संकेत किया है, किन्तु बाग्रह 'लोकायन' के प्रति ही है।[5]

लक्षण और विधान

लोक जीवन की धारा सदैव प्रवाहमान है। परम्पराएँ प्रवाह वेग में नष्ट नहीं होती। वे नये रूपों में प्रकट हो 'लोक' के बीच में गत्यात्मक बनी रहती है। युगों से अपनी चारों ओर व्याप्त जन के मध्य लोक वार्ता की गंगा बह रही है। किसी समय विशेष में ही लोक वार्ता का जन्म नहीं होता। वह सर्वकालीन, सर्वदेशीय और सर्वसम्मत है। शिक्षा के विकास ने इसे अवश्य प्रभावित किया है। शिक्षित जन के अतिरिक्त अशिक्षित, मूढ़ और रूढिवादी जन में उसका अस्तित्व गहरा है। समग्र रूप से लोक वार्ता लोक–मात्र का विषय है। 'लोक' की अपरिमित शक्ति, साहस मनोभाव, मान्यताएँ, विश्वास, राग–द्वेश, परम्पराएँ, अड़ाके, टोने–टोटके, अनुष्ठान, रीति–रिवाज, परम्पराएँ, गीत–कथाएँ, वेष–भूषा, आदि संयुक्त रूप से लोक वार्ता के चेतन अस्तित्व की घोषणा करते हैं। बोटकिन ने कहा है – "लोक वार्ता अत्यधिक दूर और अत्यन्त प्राचीन कोई वस्तु नहीं है, वह तो हमारे मध्य सत्य और जीवित है। "क्योंकि" यहाँ भूतकाल को वर्तमान से और पुस्तकहीन समाज को उस समाज से कुछ कहना है जो अपने ही विषय में पढ़ना चाहता है, जिसका सम्बन्ध हमारे मौखिक और लोकतांत्रिक संस्कृति की मूल कलाओं के प्रारम्भिक रूपों और इतिहास के एक अंग के प्रकाश से है।

"लोक वार्ता में लोक की परम्परा भावनाएँ एवं चेतनागत सभी अभिव्यक्तियों का लेखा–जोखा निहित है। अतः लोक–वार्ता केवल प्राचीन अवशेष मात्र रूढियों का अध्ययन ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् जीवित लोक भावों, लोकाभिव्यक्तियों एवं उनकी प्रवहमान प्रक्रियाओं का भी अध्ययन कारता है।

लोकवार्ता के विस्तार के संबंध में सी.येस. बर्न के एक उद्धरण का अनुवाद डा. सत्येन्द्र ने इस प्रकार किया है – "यह एक जातिबोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया। है जिसके अन्तर्गत पिछडी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों क असंस्कृत समुदायों में अवशिस्ट विश्वास, रीति–रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती है। प्रकृति के चेतन तथा जड जगत के संबंध में, भूत प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मृत्यु के संबंधों के विषयों में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के संबंध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ जीवन के रीति रिवाज तथा अनुष्ठान और त्यौहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य व्यवसाय, पशु–पालन, आदि विषयों के भी रीति–रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं तथा धर्म गाथाएँ, अवदान (लीजेण्ड) लोक कहानियाँ, साके (बैलेड), गीत किवदंतियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अर्न्तगत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में है। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोक वार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, किन्तु ये उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लेने के समय करता है, जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं, वरन वे टोटके जो मछुआ समुद्र पर करता है पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन वह बलि जो उसके बनाते समय दी जाती हैं और उसको उपयोग में लाने वालों के विश्वास। लोक वार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधी के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।"

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं – "लोक वार्ता एक जीनित शास्त्र है। लोक का जितना जीवन है उतना ही लोक वार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति – इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अर्न्तभाट होता है।[6]

लोक काव्य

मनुष्य चाहे चरवाहा, आखेटक, कृषक, वणिक या अन्य युगीन परिस्थिति का हो वह किसी न किसी प्रकार के समाज में निवास करता है। आज का मनुष्य कबीलाई सामाजिक चेतना के आगे बढ आया है। आदिवासियों और ग्रामीण लोक काव्यों में सामुदायिक चेतना अपने शहत रूप में आज भी विद्यमान है। आदिवासियों में विषमता अब विकसित हो रही है और आदिवासियों का शोषण आदिवासी नेतागण ही करते हैं तथा जमींदार और अफसर भी साथ ही जंगखोर और मुनाफाखोर भी लोक काव्य में इनके विरूद्ध समय समय पर स्वर उठाते रहे हैं तथा सामाजिकों को चेताते रहे हैं।

साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका में डॉ. मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं जिसे मैं अपनी उपयुक्त स्थापना की पुष्टि के लिये उद्धृत – जब से समाज के साथ साथ संस्कृति का विकास हुआ है तब से संस्कृति के दो रूप मिलते हैं : अभिजन संस्कृति और जन संस्कृति। अभिजन संस्कृति के समानान्तर जन संस्कृति का विकास होता है। अभिजन संस्कृति के विकल्प और विरोध में जन समुदाय जन संस्कृति की रचना करता है – संस्कृति की अभिव्यक्ति सबसे ठोस, स्थायी और प्रभावशाली रूप में भाषा और साहित्य में होती है।[7] जन संस्कृति की अभिव्यक्ति का एक रूप लोक साहित्य होता है लोक साहित्य लोक प्रिय भी होता है लेकिन हम जिस लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्र की बात कर रहें हैं वह लोक साहित्य से एकदम भिन्न है। लोक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अनेक अंतर हैं एक तो लोक साहित्य गण समाज के आज तक किसी न किसी रूप में निर्मित और विकसित होता आ रहा है। जबकि लोकप्रिय साहित्य पूंजीवादी युग और समाज की उपज है। दूसरा अंतर यह है कि लोक साहित्य की रचना जन समुदाय करता है और वही उसका श्रोता भी होता है। तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य जनता के लिये जनता के बारे में जनता द्वारा रचित साहित्य है।

जाने कितने विद्वानों ने गरीबी और भुखमरी की समस्याओं पर पुस्तकें लिखी हैं जाने कितने राजनेताओं ने एक से एक बढ़कर भाषण दिये हैं, पर लोक गीत का यह टुकड़ा जितनी खूबी और बारीकी से निरीह और उपेक्षित जन की सामाजिक स्थिति परिस्थिति और मनोदशा को उत्कीर्ण किया जाता है उतना आज तक कोई नहीं कर सका है।[8]

आर्थिक पक्ष

बघेलखण्ड के लोगों की आर्थिक दशा दयनीय ही रही है। वन प्रांतर क्षेत्र होने के कारण यहाँ के निवासियों में नगर संस्कृति का प्रभाव भी शून्य सा ही रहा है। प्रकृति के उन्नत प्रांगण में जीवन बिताने वाले यहाँ के जनमानस के जीविका और आकर्षण का केन्द्र भी वन, प्रांतर वहाँ के पशु–पक्षी, नदी–नाले, और वृक्ष रहे हैं। नदी इनकी माता, वृक्ष इनके सखा और पशु पक्षी इनके सहचर रहे हैं। इस क्षेत्र के लोगों का प्रकृति से संबंध कैसे रहा

यहाँ की संस्कृति विरासत का उपजीव्य रामचरित मानस में वखूबी देखा जा सकता है।

आर्थिक विपन्नता के चलते नवीन सदी में यहाँ का पूर्वकालिक लोक संस्कृति स्वरूप बुरी तरह से चरमरा गया है। जिसके प्रभाव से अभी यह क्षेत्र मुक्त नहीं हुआ है। प्रारम्भिक काल में जब मानव प्रकृति पर आश्रित था उन दिनों यहाँ की व्यवस्था एक पुष्ट सरल, सहज, कृत्रिमता से दूर आदर्श व्यवस्था। तब लोंगों के आर्थिक अभाव आत्म संतुष्टि के कारण परलक्षित नहीं होता था। परन्तु बाद में जब दुनिया के जागने की आहट इस क्षेत्र को भी मिली तो यहाँ नव जागरण का काल आया जरूर पर अभिशप्त जीवन को लेकर नयी सभ्यता ने लोगो को जंगल से दूर कर दियाँ पर जीने का आधार कुछ दिया नहीं लिहाजा वही दैन्यता हाथ लगी।

सांस्कृतिक पक्ष

धर्म प्राण बघेली क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत जिसका पालन इस क्षेत्र का हर जाति, वर्ग, उम्र का निवासी करना चाहता है। अद्भुत है। गंगा–जमुना, और काशी प्रयाग के इस समीपवर्ती साधनास्थली में जैसे नीतिगत निर्णय और उनके परिपालन की व्यवस्था का उद्यम किया जाता रहा है। वैदिक और उत्तर संस्कृति का चिंतन केन्द्र होने के कारण इस क्षेत्र के जर्रे जर्रे में सांस्कृतिक अनुराग झलकता है। क्यों पूर्ण प्रारम्भ की गयी–षोडस संस्कारों के पालन की परम्परा अभी भी प्रतीक रूप में है। इस संस्कारों के पूर्णता के लिये किये जाने वाले आयोजन अभी भी यहाँ सम्पन्न होते हैं। उस काल में गाये जाने वाले लोक गीत, परम्परिक गीतों की एक अच्छी श्रृंखला। परम्परा यहाँ देखने को मिलती है। षोडस संस्कारों में क्रमशः गर्भाधान, पुंसवान, जातकर्म नामकरणं, अन्नाप्राषन, चूड़ाकर्म (मुण्डन), कर्णवेध (कनछेदन) यज्ञोपवीत, वेदारम्भ (शिक्षा प्रारम्भ), समावर्तन विवाह, वानप्रस्थ संन्यास और अंतेष्ठि में प्रथम की व्यवहारिक परम्परा लुप्त हो सी गयी है परन्तु पूर्वकाल में इन संस्कारों की प्रचलन के कारण इन पर आधारित लोक गीत अभी भी मिलते हैं। हालाकि इनकी संख्या कम है।

निष्कर्ष

लोक जीवन से जुड़ा एक शब्द है 'लोक–वार्ता। आगे भाषा में क्रमशः अपना स्थान निर्धारित कर चुका है। नवीन शब्दों के सुझाव और आग्रह से 'लोक–वार्ता' के प्रति जीम हुई अवस्था कम नहीं हो सकती। कुछ वर्षों पूर्व श्री कृष्णनन्द गुप्त के सद्प्रयत्नों से प्रकाशित 'लोक वार्ता' त्रैमासिक ने इसकी जड़ें गहरी कर दी है और आधुनिक साहित्य की नवीन रचनाओं में इसका निरन्तर प्रयोग इसके अस्त्वि को स्थायित्व प्रदान करने में सफल हुआ है। अतयेव सुविधा के लिये 'फोकलोर' के लिये हम 'लोक वार्ता' शब्द ही स्वीकार करेंगे।

19वीं शताब्दी के मध्य में पाश्चात्य विद्वानों ने पिछडी जातियों के साहित्य के प्रति अन्वेषण कार्य आरम्भ किया, प्राचीन भारतीय वाड़मय, भाषा–विज्ञान का विकास, भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन, अध्ययन, पंचतंत्र, हितोपदेश, आदि भारतीय नीति कथा साहित्य के महत् ग्रन्थों का अन्य देश की कथाओं से पारस्परिक संबंध, आदि की ओर विद्वानों की दृष्टि गई। ज्यों ज्यों भाषा–विज्ञान, नृत्त्व–शास्त्र जैसे विषयों का विकास होने लगा, लोक वार्ता को क्रमशः एक विज्ञान का रूप प्राप्त होता गया। क्योंकि उक्त विषयों की अधिकांश सामग्री लोक–वार्ता से ही संबंधित है। लोक–वार्ता का स्वतंत्र अस्त्वि है। वह एक शास्त्र है और उसका व्यवस्थित रूप से अध्ययन होना चाहिये, यह निश्चित होने में अधिक समय नहीं लगा। सन 1858 में विल्हेम हेरिचरी ने उक्त सभी विषयों में समन्वय स्थापित करके मनुष्य की भाषा, रहन–सहन, आचार–विचार, जाति संबंधी विशिष्टता, आदि का उनमें समावेश करने के लिये विशेष आग्रह किया, सन 1908 में जी.येल. गोमें ने 'फोकलोर इज ये हिस्टारिकल साइन्स' ग्रंथ लिखकर इस बात का प्रतिपादन किया कि लोक वार्ता इतिहास का स्वतंत्र विषय है, जिसके अपने नियम और सिद्धान्त हैं, उसकी मान्यताओं को अन्य शास्त्रों की मान्यताओं की भांति अपनाना चाहिये। परिणामस्वरूप विद्वानों ने पूर्णरूपेण गामे की स्थापनाओं का स्वागत नहीं किया, किन्तु नृत्त्व शास्त्र के क्षेत्र में लोक–वार्ता का भी अपना महत्व है, यह स्वीकार कर लियाँ। सन 1920 में आर आर मरेट का 'सायकोलॉजी येण्ड फोकलोर' ग्रंथ प्रकाशित हुआ। उसने लिखा है कि लोक–वार्ता का केवल समाजशास्त्रीय पक्ष ग्रहण करना एकांगी दृष्टिकोण है। उसका मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी अध्ययन किया जाना चाहिये। क्योंकि लोक वार्ता निर्जीव विज्ञान नहीं है। बाह्य रूप से अध्ययन जितना आवश्यक है उतना ही उसका आन्तरिक पक्ष भी अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय है।

बघेलखण्ड के निवासी जो एक तरह से आदि काल से वनक्षेत्रीय प्रांत को जीवन आश्रय प्राप्त करते रहे हैं। सामाजिक पुस्ट ताना–बाना बुनकर के एक सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था को रूप दिया है। बघेली क्षेत्र में रहने वालों ने सामाजिक दृष्टिकोण को प्रकट करने के लिये अपने भावों, विचारों को लोक साहित्य के माध्यम से प्रकट किया है। बघेली लोक जीवन की वास्तविक तस्वीर यहाँ पर प्रचलित लोकगीतों एवं लोक कथाओं में देखने को मिलता है।

लोक जीवन और नगर जीवन में जो मूलभूत अंतर है वह भी लोक गीतों, लोक मान्यताओं की विवेचना से स्पष्ट होता है। नगर सभ्यता में जहाँ संस्कार अभी भी वैदिक नियमों, रीतियों के अनुसार होते हैं, वही लोक जीवन में ये ही संस्कार मान्य परम्परा के अनुसरण करते हुए सम्पन्न होते हैं, लिहाजा इनके स्वरूप में आंशिक परिवर्तन परिलक्षित होता है।

संदर्भ सूची

1. बघेली भाषा और साहित्यः भगवती प्रसाद शुक्ल, पृ. 81
2. वही, पृ. 84
3. हम कहे जइथेः राम प्रसाद तिवारी, सम्यक साहित्य संस्थान भरत भवन, पड़रा, रीवा
4. चरइल्ड हुड आफ फिक्शनः वाई मैककुलक
5. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. 17
6. लोक गीतों की सामाजिक व्याख्याः रामकृष्णदास, पृ.23
7. ऋ. 10.90. यजु. 31
8. जैमिनीय उपनिषद 3.28